हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श

सौ. अश्विनी अशोक देशिंगे
पीएच.डी., शोध छात्रा,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापूर
दूरभाष - 8793806465

सारांश :

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी के उपन्यास विधा में आदिवासी विमर्श उभरकर सामने आया है। 'काला पादरी' उपन्यास तेजिन्दर ने आदिवासी अंचलो में प्रस्थापित अंधविश्वास, जादू –टोना, कर्मकाण्ड, भूखमरी, अकाल, लूट, खसोट, संवेदनशून्य प्रशासन, सामंतवाद, भ्रष्टाचार आदि का अंकन किया है। पॉव तले की दूब नामक उपन्यास के माध्यम से संजीव ने आद्योगिकरण से आदिवासी जनजाति पर लंगडे पड़ा असर दिखाई देता है। ये आदिवासी लोग लूले लगड़ी एवं लकडवे की बीमारी से त्रस्त है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' नामक उपन्यास के माध्यम से संजीव ने आदिवासी लोग गरीबी, अंधविश्वास तथा पूँजीपीत, पुलिस, डाकू और व्यवस्था के शिकार होते दिखाई देते है। रेत इस उपन्यास के माध्यम से भगवानदास मोरवालजी ने 'कंजर' जनजीत का जीवन को उजागर किया है। इसमें नारी के यौन शोषण की सारी सीमाएँ तोड दी है।

बीज शब्द :

अंधविश्वास, पुलिस, नारी, यौन, शोषण, गिरबी, भूखमरी, जनजाति आदिवासी, विमर्श, रूढी-परंपरा

प्रस्तावना :

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी उपन्यास साहित्य में भूमंडलीकरण दलित विमर्श, नारी विमर्श और आदिवासी विमर्श का सूत्रपात ज्यादा दर हुआ दिखाई देता है। जिसमें आदिवासी विमर्श उपन्यास साहित्य के माध्यम से उजागर हुआ दिखाई देता है। आदिवासी साहित्य पर जब हम सोच विमर्श करते है तो हमारे सामने आदिवासी जन-जीवन हमारा ध्यान खींचता है। अनेक भारतीय भाषाओं से अलग-अलग साहित्य के माध्यम से आदिवासियों का जीवन, समस्या, संघर्ष, शोषण, परंपरा, रूढी-प्रथा हमारे सामने उजागर होती है।

आदिवासी साहित्य पर बोलने से पहले आदिवासी इस संकल्पना को समझना आवश्यक है। आदिवासी याने, जो पहले से यहाँ रह रहे हो, आदिवासी (आदि+ वासी) रहे हो। इन्हें संविधान की पंचम अनुसूची में 'जनजातियाँ' इस शब्द से परिभाषित किया है। साथ ही इन्हे अलग-अलग नामों से जाना जाता है जैसे कि, वनवासी, गिरिजन आदि।[1] 2001 की जनगणना के अनुसार सम्पूर्ण भारत में 84,326,248 आदिवासी जनसंख्या है जो कि कुल जनसंख्या का 82 प्रतिशत है। भारत में प्रमुख रूप से भील, गोंड, संथाल, मीजी, असुर, न्यीशी, हो, गालो, मोमपा तागीन, खामती, मेमबा, नाक्टे, कंजर, कबूतरा, आपातानी, मुंडा, सांसी, नट, मदारी, सँपेरे, दरवेशी, पासी, बोरी, समोड, कोल, पादाम, मिन्योंग, देववर्मा, रियॉग, नोवतिया, उचई, चाकमा, डोंबारी, कोली, पारधी, मीणा आन्गे, गरसिया, सहरिया, लेपचा, थारू, उरॉव, भवघूरा, बोंडा आदि जनजातियाँ आदिवास करती हैं, जिन्हें आदिवासी कहा जाता है।

हिंदी में हिंदी के अलग-अलग साहित्य विधा के माध्यम से आदिवासियों पर सृजन हुआ है। लेकिन उन विधा में से उपन्यास साहित्य अधिक सशक्त दिखाई देता है।

'काला पादरी' :

तेजिन्दर का 'काला पादरी' मध्यप्रदेश की 'उरॉव' जनजीत की समस्याओं को व्यक्त करनेवाला उपन्यास है। खाखा नामक युवक ही इस उपन्यास का नायक तथा काला पादरी है। जिसे इसाई फादर मैथ्यूज ने रोटी के बदले इसाई धर्म की दीक्षा देकर अलेक्जेंडर खाखा बना दिया। उपन्यासकार तेजिन्दर इसाई धर्म स्वीकार करनेवाले तथा नकारने वाले उराव आदिवासियों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन को अपने उपन्यास के माध्यम से उजागर करते है। आदिवासीयों के भूख, अभाव और दारिद्रय को व्यक्त करता हुआ लिखता है, "साहब रात में बच्चा मर गया। उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी माँ भी मर गयी। उसने भी कई दिनों से कुछ खाया नहीं था।"[2] भूख मिटाने के लिए जहरीली वनस्पतियाँ, बुटियाँ और बिल्लीयों का मास खाने का वास्तव सामने आता है। भीषण अकाल से लोग भूखे मर रहे है। नई सोच

और दृष्टि से युक्त खाखा अपने समाज के वर्तमान और भविष्य को बदलने के लिए मूल और इसाई बने अपने सभी उरांव समाज को संगठित कर अपने समाज के शोषण चक्र का भेदन करने के लिए रचनात्मक संघर्ष की अगुवाई करता है।

तेजिन्दर ने इस उपन्यास के माध्यम से आदिवासी अंचलों में प्रस्थापित अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, जादू-टोना, भूखमरी अकाल, लूट खसोट, संवेदनशून्य प्रशासन सामंतवाद धार्मिक और जातीय राजनीति, भ्रष्टाचार और आदिवासी नेतृत्व की कठपुतली को अंकित किया है।

पाँव तले की दूब :

सजीव का लघु उपन्यास है जो प्रथम पुरुष शैली में लिखा है। उपन्यास में बढते औद्योगिकरण के कारण विस्थापित होते आदिवासी समाज तथा आद्योगिक के प्रदूषण से आदिवासी बस्तियाँ उनके खेत, जंगल और जल पर गंभीर दुष्परिणाम होते हैं। साथ ही झारखंण्ड मुक्ति आंदोलन तथा स्वतंत्र राज्य निर्माण की प्रक्रिया की सुगबुगाहट भी इस उपन्यास में दिखाई देती है।

उपन्यास में डोकरी ताप विद्युत संस्थान का प्रदूषित गंदा पानी मनसा नाले में छोड़ा जाता है, जो वहाँ के आदिवासियों के पीने के पानी का एकमात्र स्त्रोत है। साथ ही जहरीला गैस छोड़ने के वजह से कई आदिवासी लोग लूले लंगड़े एवं लकडवे की बीमारी से ग्रस्त है। उपन्यास का नायक सुदीप्त आदिवासी बस्ती को देखकर कहता है- "कई लड़के लड़कियाँ और बूढ़े लकवे के मारे से ग्रासित है। और उस पर .....चेहरो की भयावनी उजली आँखे भरी दोहरी में मुझे भूत प्रेतों और डायनों का साया मँडराने लगा। इस बीमारी से ग्रस्त आदिवासियों के पास अस्पताल जाने के लिए पैसे नहीं है।

आदिवासी स्त्री जीवन बड़ा अभिशप्त है। उपन्यास में मेझिया गाँव के ओझा गाँव में फैलनेवाली बीमारी और पशुओं को मृत्यूओं के कारण गाँव की बाँझ औरत मंगरी को मानकर उसे डायन घोषित कर पत्थरों से मार कर जान लेते हैं। पंडीत इस घटना की सच्चाई सुदीप्त को बताते हुए कहता है – "ओझा ने ही इस औरत को डायन कहकर उकसाया था तीन सौ रुपये और एक बकरे की बलि मांग रहा था।"[3] इस तरह आदिवासियों में अंधश्रद्धा थी और उनका आर्थिक शोषण भी हो रहा था।

उपन्यास में पुलिस बिना कोई पूछताछ किए किसी भी जुर्म में किसी भी आदिवासी युवक को झूठे इल्जाम लगाकर गिरफ्तार करती है। तिवारी साहब के घर पर हुई चोरी के झूठे इल्जाम में जब से निर्दोष कईना को पकड़कर ले जाने लगती है, तब मझिया के सभी आदिवासी स्त्री पुरुष संतप्त होते है। पुलिस के हर दिन बढ़ते अन्याय और अत्याचार से त्रस्त होकर उनके साथ संघर्ष करने की भावना आदिवासियों में प्रबल होती है।

प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासियों को मुलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इन्हें जीते जी तन ढकने के लिए न तो कपड़ा मिलता है और पेट भरने के लिए ना अन्न और ना ही रहने के लिए घर है। मेझिया आदिवासी को देखकर समीर कहता है- "वे इतने गरीब थे कि कपड़ा के नाम पर चिथडे का कच्छा पहने हुए थे, पुट्टे तक खुले हुए, औरतों को जैसे –जैसे बदन ढकने को मिला है कपड़ा। बच्चे कंगाल जैसे।"[4]

इस तरह इस उपन्यास के माध्यम संजीव में आदिवासियों के जीवन के संघर्ष का चित्रण किया है।

जंगल जहाँ शुरू होता है :

प्रस्तुत उपन्यास में संजीव ने बिहार के पश्चिम चंपारण के 'मिनी चंबल के नाम से जाने वाले बीहड़ो में पनपने वाली डाकू समस्या को प्रमुख रूप से चित्रित किया है। संजीव ने इस उपन्यास में यह प्रश्न उठाया है कि डाकू बनते नहीं बनाए जाते हैं। इस उपन्यास में थारू आदिवासी जो गरीबी, दरिद्रता, कुपोषण, अंधविश्वास में अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो दूसरी ओर एक साथ पूँजीपीत, पुलिस, डाकू और व्यवस्था के शिकार हैं।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है जैसे-मंत्री दूबेजी जो डाकुओं की सहायता से चुनाव जीतते हैं और फिर उन्हें संरक्षण भी देते हैं। दूसरा पात्र पुलिस अफसर 'कुमार' जो उस पुलिस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो मिनी चंबल के क्षेत्र में नियुक्त होने के बाद शुरू में पुरे जोश और ईमानदारी के साथ काम करते हैं परंतु हर तरफ से निराशा के चलते वो उस बर्बर..... पुलिस व्यवस्था का हिस्सा बनकर तलाशी के नाम पर जन सामान्य पर अन्याय-अत्याचार करना, एनकाउंटर करना, पूछताछ के नाम पर नारियों का यौन शोषण करना तथा प्रमोशन के लिए नेताओं की चाटुकारिता करते हैं।

उपन्यास में भाषा को अधिक सरस, प्रभावी, सजीव बनाने के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग संजीव ने किया हैं, जिसमें प्रमुखत: वर्णनात्मक, पूर्वदीप्ति, पत्रात्मक, चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक संवाद और कथात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। अत: यहाँ व्यंग्यात्मक शैली का उदाहरण दृष्टव्य है। जैसे –"ओ भइया दिल्ली से हियॉ.....तक जो भी कुरसी पे बइठा है सभी तो डाकू है। सब बंद कर दे हम भी कर दे।[5]

प्रस्तुत उपन्यास में संजीव ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा प्राकृतिक, समस्याओं के कारण आम आदमी को किस प्रकार अपराध के जंगल में प्रवेश करने के लिए मजबूर किया जाता है, इसका संपूर्ण दस्तावेज यहाँ पर प्रस्तुत किया है।

रेत :

भगवानदास मोरवाल ने अपने 'रेत' उपन्यास के माध्यम से हरियाना के 'कंजर' जनजाति के सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं को प्रस्तुत करता है। 'कंजर' अर्थात काननचर याने जंगल में घूमनेवाले यह कंजर अपने आप को 'माना गुरु' और माँ नलिन्या की संन्तान मानता है।

प्रस्तुत उपन्यास आदिवासी स्त्री विमर्श की कृति है। सामान्य तौर पर कंजरों को चोरी करनेवाली जनजाति समझा जाता है। अंग्रेज सरकार ने इन पर कई बंधन डाल दिये थे जिसे उपन्यासकार ने थानेदार केसर सिंह के माध्यम से कहलवाया है। केसर सिंह कबीले के मुखिया से कहता है, "यही की बिना इजाजत या इत्तिला दिए कोई कंजर गाँव छोड़कर नहीं जा सकता और जाता है तो मुखिया को इसकी जानकारी होनी चाहिए, जिसकी इतिल्ला मुखिया को थाने में देनी होती है।"[6] इनकी महिलाओं को भी थाने जाकर हजरी देनी पड़ती है। घर के पुरुष जेल में या बाहर होने के कारण इन्हें मजबूरी वश वेश्या-व्यवसाय करना पड़ता है। इन्ही बातों को उपन्यासकार ने बड़ी स्पष्टता से उपन्यास में रखा है।

उपन्यास में कंजरों के पुलिसों, अफसरो, प्रशासको द्वारा हो रहे शोषण को व्यक्त किया है। साथ ही यह उपन्यास यौन शोषण की तो सीमाएँ तोड देता है।

निष्कर्ष :

हिंदी आदिवासी साहित्य पर जब विचार करते हैं तो हमें विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी के आदिवासी उपन्यास आकर्षित करते हैं। इसकी खास वजह है कि यह उपन्यास केवल आदिवासियों के सांस्कृतिक, प्राकृतिक जीवन को व्यक्त नहीं करते तो भूमंडलीकरण के युग में आदिवासियों के सामने आ खडी समस्याओं को सामने रखते है।

संदर्भ :

1) हिन्दी साहित्य और साहित्यिक विमर्श – डॉ. सुरैय्या शेख, पृ. 206
2) काला पादरी – तेजिन्दर, पृ. सं. 21
3) पॉव तले की दूब – संजीव, पृ. सं. 33
4) पॉव तले की दूब – संजीव, पृ. सं. पृ. 15
5) जंगल जहाँ शुरू होता है – संजीव, पृ. सं. 151
6) रेत – भगवानदास मोरवाल, पृ. सं. 51